Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 11, Issue 1 | May 2023 - October 2023 | pp. 23-29

ऐतिहासिक उपन्यास : इतिहास लेखन में प्रयोग और समस्याएँ

सुरेंद्र सिंह

इतिहास व भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

साहित्य में इतिहास को तलाशने का कार्य इतिहासकार प्रायः करते आए हैं, किन्तु जहां साहित्य में इतिहास का भरपूर प्रयोग किया गया वहां इतिहास केवल व्याख्याओं की सहायता तक ही साहित्य के प्रति सीमित रहा। ऐसे में उन प्रश्नों की पड़ताल आवश्यक हो जाती है जो इतिहास की इस उदासीनता को प्रकट करें। हाल के वर्षों में विकसित हुई समग्र व समावेशी इतिहास लेखन की धारणा तब तक अपूर्ण है जब तक कि ऐसे सभी पक्षों को इतिहास में स्थान न दे दिया जाए जो इतिहास से संगतता रखते हैं, ऐतिहासिक उपन्यास भी एक ऐसा ही पक्ष है; वह उपेक्षित ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करता है जो अब तक इतिहास में स्थान न पा सकी। साहित्य के प्रति कुछ इतिहासकारों व साहित्यकारों का दुराग्रह है किंतु सूक्ष्म अवलोकन से ऐसे कई उपन्यास हमारे सामने आते हैं जो साहित्य से अधिक इतिहास के निकट है, साथ ही इनमें विभिन्न लेखकों के अपने इतिहास विषयक दृष्टिकोण भी दिखते हैं। कुछ इतिहासकार सीमित तौर पर ऐसे उपन्यासों का प्रयोग प्रसंगवश करते भी है किंतु इतिहास लेखन में इसे एक नए प्रयोग की तरह नहीं देखते। प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य है- इतिहास के पारम्परिक दृष्टिकोण का खण्डन करना, इतिहास लेखक में इनके प्रयोग संबंधी समस्याओं और सीमाओं का अवलोकन करना एवं साहित्य व इतिहास के सम्बन्धों को स्पष्टत करना।

संकेताक्षर—*इतिहास लेखन, साहित्यिक सृजनात्मकता, इतिहास दृष्टि, कल्पना व यथार्थ, साहित्यिक स्रोत*

प्रस्तावना

इतिहास व साहित्य के घनिष्ठ संबंधों को प्रायः अधिकांश इतिहासकार स्वीकृति देते हैं क्योंकि विशेषकर भारत जैसे देशों के संबंध में (जिनकी समृद्ध साहित्यिक परंपरा रही है) इतिहास लेखन में साहित्य का भरपूर प्रयोग हुआ है जो समकालीन समाज, राजनीति, अर्थतंत्र और लोक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। इतिहास को मात्र राजनीतिक घटनाक्रमों के आधार पर देखने की दृष्टि का बेहद पहले खंडन हो चुका है वर्तमान में इतिहास को समावेशी व समग्र दृष्टिकोण से देखने की प्रवृत्ति में काफी विस्तार हुआ है, यही कारण है कि इतिहास में उन लोक पक्षों का समावेश किया जा रहा है जो अभी तक उपेक्षित थे। शायद इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर इतिहास को पाश्चात्य दृष्टि से देखने की व्याख्याओं को भारतीय इतिहासकारों ने हाल के दिनों में उपेक्षित करना शुरू किया है जिससे न केवल भारतीय इतिहास के उन पृष्ठों को इतिहास में स्थान मिला जो वास्तव में इस योग्य है बल्कि इससे भारतीय इतिहास और भी समृद्ध हुआ।

बहरहाल समयानुसार विकसित हुए संस्कृत व अन्य भाषा के शासकीय या राजकीय साहित्य को इतिहास लेखन में पर्याप्त स्थान मिला है किंतु यह लोक मौखिक परंपराएँ पीछे छूट गई। आगे राष्ट्रीय आंदोलन के समानांतर जिस बौद्धिक प्रतिरोध का विकास हुआ उसने प्राचीन भारतीय बौद्धिक पुनरुत्थान में महत्ती भूमिका निभाई, जिनका मूल आधार यही प्राचीन भारतीय साहित्य रहा था। इस बौद्धिक प्रतिरोध का एक विशिष्ट

माध्यम हिंदी भाषा में समय अनुसार लिखे गए इतिहास विषयक उपन्यास माने जा सकते हैं क्योंकि इन्होंने न केवल उच्चतर बौद्धिक पक्ष को प्रभावित किया बल्कि सामान्य साक्षर जनता में भी सामूहिक चेतना का विकास किया और सरल तरीके से उस वैभवपूर्ण अतीत से उन्हें परिचित कराया जिससे वह सर्वथा अनभिज्ञ थे। किंतु ब्रिटिश शासन के अधीन जिस इतिहास लेखन परंपरा का विकास हुआ उसने लोक साहित्य की भांति इस ऐतिहासिक उपन्यास परंपरा को भी उपेक्षित ही रखा। (गौरतलब है कि विश्व इतिहास संबंधी ऐसी कृतियों में ऐसी साहित्यिक रचनाओं का भरपूर प्रयोग किया जाता है) स्वतंत्रता के बाद भी इसी दृष्टि का प्रचलन कई दशकों तक रहा, परिणाम स्वरूप अब भी इतिहास में ऐसी कृतियों का समावेश करने से परहेज ही रखा जाता है। साहित्य की दृष्टि से ऐसे कई प्रयास हुए हैं किंतु उनमें इतिहास दर्शन व तथ्यों की बजाय भावनात्मक बौद्धिकता को अधिक महत्व दिया गया है या साहित्यिक सृजनात्मकता को। अतः इतिहास को साहित्य की दृष्टि से अधिक स्पष्ट रूप से देखने के लिए ऐसे ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन व शोध आवश्यक हो जाता है जिनमें ऐतिहासिक तथ्यों के साथ कोई छेड़छाड़ न की गई हो बस रुचिकर बनाने के लिए संवादों की कल्पना मात्र ही एक अपवाद हो, हिंदी भाषा में ऐसे कई उपन्यास उपलब्ध है। हालाँकि ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास व सृजनात्मकता में स्पष्ट रेखा खींचना थोड़ा कठिन है किंतु इतिहास आधारित घटनाओं को सरस बनाने के लिए जिस कल्पनात्मक संवादों का इनमें प्रयोग हुआ उनको दरकिनार रखकर लेखक के इतिहास बोध व दृष्टि संबंधी शोध किया जा सकता है। गौरतलब है कि इन ऐतिहासिक हिंदी उपन्यासों ने इतिहास लेखन का वह दायरा भर दिया जो पिछड़े वर्गों, नारी दृष्टिकोण, लोक आख्यान व स्वतंत्र कल्पनाशीलता को उपेक्षित करने के कारण एक लंबे समय से खाली था। इतिहास और कल्पना में सामंजस्य स्थापित कर रचे गए इन हिंदी उपन्यासों की अपनी कुछ कमियां व विशेषताएं है जो न केवल आधुनिक हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाने में सफल रहे बल्कि उस बौद्धिक प्रतिरोध को जन्म भी दिया जिसने औपनिवेशिक मानसिकता पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रहार किया। ऐतिहासिक उपन्यासों का सूत्रपात ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध उठे जन प्रतिरोध के समानांतर हुआ इसने प्राचीन, मध्ययुग और आधुनिक युग की स्वतंत्र दृष्टिकोण से व्याख्याएं की।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'ऐतिहासिक उपन्यास ऐसा उपन्यास है जिसमें अतीतकालीन पात्र, वातावरण व घटनाओं के ज्ञात रहस्यों की कल्पना से मांसल व जीवित बनाने का प्रयास किया जाता है। किशोरी लाल गोस्वामी का 'स्वर्गीय कुसुम कुमारी' (1881) पहला ऐतिहासिक हिंदी उपन्यास माना गया है। आगे इस ऐतिहासिक उपन्यास परंपरा को रांगेय राघव, वृंदावन लाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, भीष्म साहनी, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर जैसे उपन्यासकारों ने समृद्ध बनाया। इतिहास की विभिन्न घ्ज्ञटनाओं पर आधारित इन उपन्यासों में प्रमुख है—एक म्यान दो तलवार, आग का दरिया, दासी की दास्तान, ययाति, सुल्ताना रजिया बेगम, दिव्या, चित्रलेखा, पाटलिपुत्र की साम्राज्ञी, जय यौद्धेय, वैशाली की नगरवधू, जय सोमनाथ, पानीपत, तमस, झूठा-सच और सुहाग के नूपुर मुख्य है। कालांतर में अन्य भाषा में लिखे गए ऐतिहासिक उपन्यासों का भी हिंदी में अनुवाद हुआ जिसने इस परंपरा को और समृद्ध बनाया जिसमें कई चांद थे सरे आसमां, कब्जे जमाँ और अकबर जैसे उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। हिंदी की समृद्ध ऐतिहासिक उपन्यास परंपरा में लेखकों के मत वैविध्य तो है ही साथ ही इतिहास के प्रति उनकी दृष्टि में भी पर्याप्त भिन्नताएं हैं, जहां कुछ लेखक संवादों की ऐतिहासिकता संबंधी कल्पना मात्र को वरीयता देते हैं वहीं कुछ लेखक न केवल तथ्यों को ज्यों के त्यों प्रस्तुत करते हैं बल्कि उनके आधार पर एक बौद्धिक सारांश की निर्मिती भी करते हैं जिससे उपन्यास की सीमा मनोरंजन, रोचक या साहित्यिक कल्पनाशीलता तक सीमित न होकर इतिहास लेखन के विशेष ढंग तक विस्तृत हो जाती है।

साहित्य में इतिहास : इतिहास दृष्टि की खोज

स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर जिस ऐतिहासिक उपन्यास परंपरा का विकास हुआ उसमें न केवल राष्ट्रीय आंदोलन के बौद्धिक प्रतिरोध पक्ष को जाना जा सकता है बल्कि लेखकों के वैचारिक मतों, अध्ययन क्षेत्र (जैसा कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री और राहुल सांकृत्यायन ने उपन्यास लिखने से पूर्व कई वर्षों तक भारतीय साहित्य व इतिहास का गहन अध्ययन किया) और जन रुचि को भी ज्ञात किया जा सकता है। सुविदित है कि प्रत्यक्ष रुप से औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध लिखा गया साहित्य अपराधिक माना जाता था अतः समकालीन

लेखकों ने इसका विकल्प ऐतिहासिक उपन्यासों के रूप में चुना और व्यंग्यात्मक या परोक्ष ढंग से प्राचीन भारतीय साहित्य संस्कृति और सभ्यता के उन गौरवपूर्ण प्रश्नों को उजागर किया जो औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध परोक्ष प्रतिरोध था। कई उपन्यासों में यह वर्णन काफी अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाता है किंतु कुछ साहित्यकारों को छोड़कर अन्य लेखकों ने ऐसी त्रुटि से प्रायः बचने का प्रयास किया हैं। ऐसे विषयगत उपन्यासों पर चर्चा करने से पूर्व हमें उन प्रश्नों को जान लेने की आवश्यकता है जो हमें इतिहास के दृष्टिकोण से इनके प्रति सूझते हैं, यथा—लेखन का इतिहास स्रोत, उपयोगिता, लाभ व समस्याएं एवं शोध की सीमाएं।

इतिहासकार हो या साहित्यकार, कृतियों की रचना के संबंध में वह प्रायः अपनी रुचि के अनुरूप विषय का चयन करते हैं, स्वाभाविक है वह इसके लिए एक उचित स्रोत सामग्री का अध्ययन भी करते हैं और उन्हीं का आलोचनात्मक संस्करण उनकी रचना को माना जा सकता है जिसमें वह तर्कों का खंडन करते हैं जो उनकी दृष्टि में अतार्किक हो, फिर भले ही वह इतिहास की दृष्टि में तथ्यात्मक आधार पर हो या साहित्य की दृष्टि से सृजनात्मक कल्पनाशीलता के आधार पर। हालाँकि ऐतिहासिक उपन्यासों की दृष्टि में यह आधार मिश्रित हो जाता है जिसमें तार्किक तथ्यों के साथ साथ सृजनात्मकता को उसी सीमा तक प्रयोग में लिया जाता है जहां तक वह इन तथ्यों से संगत हो। जैसा कि राहुल सांकृत्यायन कहते हैं 'जय यौद्धेय की रचना मैंने इतिहास के तथ्यों के अस्थि पंजर से की और उसके ऊपर कल्पना का मांस स्थापित किया और इस तरह यह दैहिक कृति का रूप सामने आया।'[1] हालाँकि शाजी जमाँ कृत अकबर जैसी रचनाएँ विशुद्ध इतिहास में समविष्ट की जा सकती है।

कुछ लेखकों ने किसी रचना से पहले भारत की लंबी साहित्यिक परंपरा का भी अध्ययन किया इसी साहित्य के बल पर साहित्यिक इतिहास रचनाएं रची। जैसा कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री 'वयं रक्षामः' के संबंध में कहते हैं' मेरे हृदय और मस्तिष्क में भाव और विचारों की जो आधी शताब्दी की अर्जित प्रज्ञा पूंजी थी उस सबको मैंने वयं रक्षामः में झोंक दिया... इस उपन्यास में प्राग्वेदकालीन नर, नाग, देव, दैत्य, दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत पुरातन रेखाचित्र हैं जिन्हें धर्म के रंगीन शीशे में देखकर सारे संसार ने उन्हें अंतरिक्ष का देवता मान लिया, ...यह उपन्यास से अधिक वेद, पुराण, दर्शन और वैदेशिक इतिहास ग्रंथों का दुस्साहस अध्ययन है, ...संक्षेप में मैंने सब वेद, पुराण, दर्शन, ब्राह्मण और इतिहास के प्राप्तों की एक बड़ी सी गठरी बांध कर इतिहास रस में एक डुबकी दे दी, सबको इतिहास में रंग दिया।[2] आचार्य चतुरसेन प्रायः अपने समस्त इतिहास विषयक उपन्यासों में इतिहास और कल्पना की एक स्पष्ट रेखा खींचने का प्रयास भी करते दिखते हैं और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह उस समय की भाषा, समाज और संबंधित शब्दावली का पूरा पूरा ध्यान भी रखते हैं साथ ही कुछ पृष्ठों के अंतराल पर वह एक इतिहास विषयक वर्णन भी दे देते हैं जैसे—"सुमेरू जाति प्रोटोलामाईट जाति के बाद मेसोपोटामिया में जाकर बसी है, सुमेरू सभ्यता के बाद मिस्र की सभ्यता का उदय हुआ। प्रसिद्ध पुरातत्वविद् डॉ. डी. टेरा, जो अमेरिकन विद्वान है, निश्चित रूप से सिंधु प्रदेश को पत्थर और धातु युग में मिलाने वाला कहते हैं, ताम्र सभ्यता के बाद कांसे की सभ्यता आई... इन दोनों सभ्यताओं के मध्य किसी बहुत बड़ी बाढ़ के पानी द्वारा जमी हुई चिकनी मिट्टी का 4 फुट का स्तर प्राप्त हुआ है। यूरोपीय पुरातत्ववेत्ताओं का यह मत है कि मिट्टी का यह स्तर उस बड़ी बाढ़ द्वारा बनाया गया था जिसको प्राचीन ग्रंथों में नूह की प्रलय कहते हैं।[3] इसे विशद् वर्णन के कारण यह कृति साहित्य से अधिक ऐतिहासिक हो जाती है क्योंकि इसमें पुरातात्विक और साहित्यिक स्रोतों का भरपूर प्रयोग किया गया है।

राहुल सांकृत्यायन ने अपने उपन्यासों में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुरूप इतिहास का प्रयोग किया है, संभवत यही कारण है कि उन्होंने द्वितीय नगरीकरण और गणतांत्रिक कालखंड को अधिक वरीयता दी है। उनकी इतिहास विषयक सामग्री सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक सक्रमण से प्रभावित हैं जैसा कि 'जय योद्धैय' के दृष्टिपात से ज्ञात होता है—"लाखों दीनारों कि सम्पति साथ चल रही थी, इसलिए दस्युओं का भय बराबर था, खासकर जब कि हम शतद्र (शतलज) को पार कर यौधेयों की सीमा से देवपुत्र शाही (कृषाण) के राज्य में प्रविष्ठ हुए। लेकिन हमें दस्युओं का डर नहीं था। हमारे पास सौ सवार तो थे ही, साथ ही हरेक गाड़ीवान और दूसरे सार्थी भी तलवार चलाने में दक्ष थे। ठहरने के निश्चित स्थान थे, जहाँ जल, तृण और अन्न सुलभ थे। शकटों को बीच में

करके शस्त्रधारी सजग हो पहरा देते। तलवार और जनसंख्या तो थी ही, ऊपर से यौद्धेय लड़ाकों का सबको पता था, इसलिए कोई आँख उठाकर हमारी ओर देखने की हिम्मत न करता था। तात सारे सार्थ के प्रमुख थे।"[4] उनके अन्य उपन्यासों में गहरी इतिहास दृष्टि का प्रमाण वह स्वयं भूमिका में दे देते हैं, अतः यशपाल मानते हैं कि राहुल कथा कहकर अपने पाठकों को बहलाना अपना काम न मानकर समझना अपना काम समझते हैं व समझाने के लिए उनके पास इतना अधिक हैं कि उस पर चढ़ाई कला की चाशनी में से औषधि फूट पड़ती हैं।[5] हालाँकि हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में इतिहास से अधिक शृंगार व कोमल भावना की प्रधानता हैं फिर भी एक सामाजिक व स्त्री विषयक चित्रण में वह अद्वितीय हैं। सम्राट हर्ष के जीवनीकार 'बाणभट्ट की आत्मकथा' रचकर उन्होंने सम्भवतः लेखक के प्रति समानुभूति प्रकट की। एक उपन्यास को किसी सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति की आत्मकथा के रूप में लिखने का यह ढंग काफी अंशों तक मौलिक है। ऐतिहासिक व्यक्ति व ऐतिहासिक घटनाओं के संबंध में उपन्यास या नाटक तो लिखे ही जाया करते थे, परंतु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस तरह अपने उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के रूप में लिखा है, इस तरह के उपन्यास संपूर्ण विश्व के उपन्यास साहित्य में भी बहुत कम मिलेंगे।[6] वैसे तो पूरे उपन्यास में कल्पनात्मक संवादों और यत्र तत्र बाणभट्ट की रचनाओं संबंधी श्लोक है किंतु श्लोकों के आधार पर बाणभट्ट का इतिहास खोजना वास्तव में एक प्रशंसनीय प्रयास है, हर्षचरित के कथामुख से लिए गए श्लोक के आधार पर वह लिखते हैं—'वे उड्डूपति भट्ट मेरे (बाणभट्ट पर) ऊपर जितना स्नेह रखते थे, उतना मेरे परिवार में कोई नहीं रखता था। उन्होंने अनेक अपकर्मों से मुझे बचाया है प्रसंगवश मैं उनकी चर्चा यथास्थान करूंगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि 14 वर्ष की उम्र में जब मेरे पिता नहीं रहे—माता तो बहुत पहले मर चुकी थी—तो यह उड्डूपति भट्ट ही मुझे उस स्नेह रस सिंचित करते रहे जिसे मैंने अपनी माता से पाया था।[7] पृष्ठों के अंत में दी गई संदर्भ-टिप्पणियां इसे किसी इतिहास ग्रंथ की भांति कुछ प्रमाणित करने का प्रयास भी करती है। रांगेय राघव ने उपन्यास शैली में कई ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवनियां लिखने का दुस्साहसिक प्रयास किया, जिसका एक विशिष्ट उदाहरण नारीवादी दृष्टिकोण से लिखी गई कृति 'यशोधरा जीत गई' है। समकालीन ग्रंथों में नारी दृष्टिकोण खोज कर उसी के अनुरूप रचा गया यह ग्रंथ तात्कालिक नारी स्थिति उजागर करने तक इतिहास से संगत है। उनके अनुसार "गौतम बुद्ध का जीवन त्रिपिटकों को में बिखरा पड़ा है। अभी तक बुद्ध पर लिखने वालों का दृष्टिकोण सांप्रदायिक रहा है। मैंने अपना दृष्टिकोण ऐतिहासिक रखा है,प्राचीन भारत में सांप्रदायिक आंखों ने जानबूझकर एक दूसरे के बारे में नहीं देखा। इसलिए भारतीय इतिहास को जानने के लिए हर संप्रदाय को देखना आवश्यक है,यही कारण है कि यहाँ गौतम बुद्ध केवल त्रिपिटकों की बात नहीं करते वह इतिहास, वेद, पुराण आदि की भी बातें करते हैं।... यशोधरा का नाम गोपा भी आता है और कहीं भद्रा कपिलायनी तथा कहीं भद्रा कात्यायनी आता है, मैंने भद्रा कपिलायनी लिखा है और यशोधरा भी।"[8] रांगेय राघव की इतिहास दृष्टि ऐतिहासिक अध्ययन पर तो आधारित है किंतु उनका कृतित्व सारांश संवादों के रूप में सामने आता है न कि ऐतिहासिक जानकारी के रूप में। अमृतलाल नागर का 'भूख' इस दृष्टि से उपयोगी है जो 1943 में बंगाल के भीषण अकाल पर केंद्रित है। यह उस समय की खींची गई भूखी तस्वीरों का कथात्मक वर्णन है,जो सामंतवाद और औपनिवेशिक शासन दोनों पर कड़ा प्रहार करता है। एक जमींदार का चित्रण करते हुए वह लिखते हैं—'दयाल जमींदार को शराब की एक बूंद तड़पा रही थी और दयाल की प्रजा को चावल की एक कणी।'[9] हिंदी के समानांतर ही उर्दू किस्सागोई ने भी इतिहास में ऐसा विशिष्ट योगदान दिया है और कालांतर में ऐसी कृतियों का हिंदी अनुवाद भी हुआ जिसका सबसे प्रमुख उदाहरण शमशुर्रहमान फारूकी का उपन्यास 'कई चांद थे सरे-आसमां' है जो उन्नीसवीं सदी के भारतीय समाज और राजनीतिक घटनाक्रमों का किस्सागोई अंदाज में अद्भुत चित्रण करता है, जिसमें भारतीय समाज पर पढ़ रहे अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव भी दिखता है। यह उर्दू कविता के उस शानदार दौर के समाज का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब माना जा सकता है जिसमें राजस्थान और देहली के निकटवर्ती क्षेत्रों का सूक्ष्म वर्णन है। समकालीन शब्दों व स्थानों के पुराने वर्णन संबंधी उनका दृष्टिकोण बेहतरीन है, यथा—"होज शम्सी के खंडहर में उन दिनों कुछ एक पिंडारों ने चुपके-चुपके अपने ठिकाने बना लिए थे और मौका मुनासिब देखकर वह रात के मुसाफिरों का शिकार किया करते... बीच बसाख के दिन थे। रेवाड़ी और लोहारू की तरफ से आने वाली गर्म हवा में जितनी गर्मी थी

उससे ज्यादा गर्दो गुब्बार था। लेकिन यही गर्दो गुब्बार हफ्ते में चार या पांच दिन सूरज ढलने के कुछ पहले अलवर व रणथम्भौर के जंगलों की थोड़ी बहुत नमी पीकर और रास्ते में घने झाड़-झंकार के साथ मजे करके जब गुड़गांव पहुंचता तो आंधी तूफान की शक्ल ले लेता था।"[10] यह संक्षिप्त एवं सतही वर्णन इन लेखकों के इतिहास के प्रति विषय चयन, उद्देश्य व इतिहास स्रोत को प्रस्तुत करने में सक्षम है।

संबंधित क्षेत्र में कार्य और चुनौतियाँ

साहित्य ने ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर लिखी गई ऐसी रचनाओं को पर्याप्त स्थान दिया, किंतु इतिहास की तरफ से ऐसे नवाचार व शोध की बेहद कमी है। इस विषय में सर्वाधिक सराहनीय कार्य 'मधुरेश' का है जो आधुनिक दृष्टिकोण से हाल ही में संपन्न किया गया है। 'ऐतिहासिक उपन्यास : इतिहास और इतिहास दृष्टि' पुस्तक में इन्होंने संस्कृति और ऐतिहासिक उपन्यास, लोक पक्ष, इतिहास में वर्तमान को चित्रित करने की कला और कथा में इतिहास एवं इतिहास दृष्टि संबंधी सवालों की समीक्षा की है। इन्होंने बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, कन्हैयालाल मुंशी, किशोरी लाल गोस्वामी, वृंदावन लाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन व हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे लेखकों की लेखन शैली का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया है। मधुरेश ने अमृतलाल नागर, यशपाल व राहुल सांकृत्यायन पर पृथक रचनाएं रच कर क्षेत्र को और अधिक विस्तृत करने का कार्य किया है साथ ही दिव्या, बाणभट्ट की आत्मकथा और चित्रलेखा पर एकात्मक पुस्तकें लिखकर महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह साहित्य में वर्तमान को देखने वाली दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, 'इतिहास में तथ्यों और आंकड़ों का विशेष महत्व होने पर भी वह केवल उन्हीं से नहीं बनता है। अपने वर्तमान और भविष्य को बनाने संभालने के लिए भी हम इतिहास की ओर जाते हैं मानव विकास के क्रम में आए लोकवृत, चरित-नायक, निजंधरी कथाएं आदि सब व्यापक अर्थ में इतिहास का हिस्सा है। अपने समय को परिभाषित करने की प्रक्रिया में इतिहासकार ही नहीं जब तब साहित्यकार भी इतिहास की ओर जाते हैं और अपने समय की जरूरतों के हिसाब से चरित्र- नायकों व घटना-प्रसंगों की अवतारणा करते हैं कि एक नई चमक-दमक के साथ वह हमारे सामने आ खड़े होते हैं।'[11] इनके शोध की मुख्य कमी यह है कि उन्होंने इतिहास को साहित्य की दृष्टि से देखा है ना कि साहित्य को इतिहास की दृष्टि से साथ ही उपन्यासों में व्याप्त ऐतिहासिक त्रुटियों पर उन्होंने कम ही ध्यान दिया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास पुस्तक में उनके पूर्ववर्ती लेखकों और उनके उपन्यासों संबंधी विवरण प्रस्तुत किए हैं किंतु उनके बाद हुए की कई रचनाकारों संबंधी विवरण ना मिल पाने के कारण उनका कार्य उपरोक्त विषय में गौण हो जाता है। उन्होंने आधुनिक साहित्य पर अधिक नहीं लिखा और जो लिखा है उनमें ऐसे स्वतंत्र विषय का अभाव है। इन्हीं की तरह अन्य हिंदी भाषा के इतिहास लेखकों ने मात्र प्रसंगवश या विषयगत आवश्यकता के कारण ऐसे उपन्यासों का उल्लेख किया है। डॉ. गुरदीप सिंह खुल्लर का शोध कार्य 'ऐतिहासिक उपन्यास व ऐतिहासिक रोमांस' विषय की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास लेखन शैली पर अधिक प्रकाश डालता है न कि उसमें निहित इतिहास लेखन संबंधी धारणा व लेखकों की इतिहास विषयक दृष्टिकोण पर। मोहम्मद इरफान का शोध कार्य 'वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इतिहास दृष्टि' में इतिहास लेखन व दर्शन को तलाशने का प्रशंसनीय प्रयास किया गया है। इसमें यत्र-तत्र इतिहासकारों के विचारों का भी समावेश किया गया है किंतु यह शोध मात्र वृंदावनलाल वर्मा तक ही सीमित है जो अपर्याप्त है। ऐसे ही सुमित सरकार व आधुनिक भारत विषयक इतिहासकारों ने प्रसंगवश ऐसी ऐतिहासिक साहित्यिक कृतियों का अपने लेखन में उल्लेख किया है जो संबंधित घटनाओं से जुड़े हो किंतु यह आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन तक ही सीमित प्रयास है और वह भी अत्यंत अल्प, जबकि हम विश्व इतिहास संबंधी पुस्तकों में फ्रांसीसी क्रांति, विश्व युद्ध आदि घटनाओं के इर्द-गिर्द रचे गए उपन्यासों संबंधी व्यापक विवरण पाते हैं।

उपन्यासों के माध्यम से लोक साहित्य व अब तक इतिहास से लोप पक्षों के वर्णन का इतिहास लेखन में प्रयोग करने संबंधी लाभ-समस्याओं संबंधी समीक्षा भी करनी होगी। हालाँकि हमें सबसे अधिक इस बात के प्रति सजग रहना होगा कि हमारा शोध साहित्यिक दृष्टि से न हो (जो अब तक होता आया है) बल्कि इतिहास की दृष्टि से हो, ताकि इतिहास लेखन में एक नया मार्ग खुल सके जो अब तक उपेक्षित था। साथ ही यह भी ध्यान में रखना होगा कि उपन्यास विषयक रचनाओं में समस्त व यथावत इतिहास को तलाशना ठीक नहीं है, क्योंकि साहित्य कृतियों में व्याप्त सृजनात्मकता को उपेक्षित नहीं किया

जा सकता। इतिहास लेखन में ऐसी कृतियों का प्रयोग करते समय हमें कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो इनकी साहित्यिक सृजनात्मकता के कारण उपजती है। गौरतलब है कि प्रेमचंद ने ऐसी कृतियों को संशय की दृष्टि से देखा है, इस संदर्भ में सवाल स्वभाविक लग सकता है कि एक विकासशील और संभावनापूर्ण साहित्य के तौर पर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित रचनाओं के प्रति प्रेमचंद इतने शंकालु क्यों दिखते हैं?... ऐतिहासिक उपन्यास के प्रति प्रेमचंद की बुनियादी शंका के मूल में इतिहास के दुरुपयोग की उनकी आशंका की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है,... अतः इतिहास की पृष्ठभूमि पर आधारित रचनाओं के संबंध में प्रेमचंद का विरोध वस्तुतः स्वाधीनता आंदोलन में सांप्रदायिक सद्भाव की उनकी चिंता के रूप में देखा जाना चाहिए।[12] स्वाभाविक है कि प्राचीन वैभव पर लिखे गए साहित्य का एक दृष्टिकोण सांप्रदायिक भी हो सकता है जिसे इतिहास की दृष्टि से इतिहास में समावेशित नहीं किया जा सकता है। इतिहास लेखन में इनके प्रयोग संबंधी और भी कई चुनौतियाँ हैं, यथा—निजी मत, एकपक्षीयता, समानान्तर घटनाओं की उपेक्षा, स्पष्ट सीमा रेखा का अभाव, कल्पनात्मक पात्र एवं संदर्भ न होना।

अतः आवश्यक हो जाता है कि इन चुनौतियों और समस्याओं को ध्यान में रखकर ऐसे शोध को आगे बढ़ाया जाए। इन चुनौतियों के बावजूद हम इतिहास में ऐसी कृतियों की भूमिका को उपेक्षित नहीं कर सकते क्योंकि विभिन्न काल खंडों पर रची गई इन रचनाओं को न केवल हम एक संदर्भ की तरह प्रस्तुत कर सकते हैं बल्कि समकालीन सामाजिक व राजनीतिक ढांचे के जीवंत चित्रण के रूप में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है, जैसे आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'वैशाली की नगरवधु' हमें द्वितीय नगरीकरण की बारीकियों से परिचित कराने में सक्षम है साथ ही बौद्ध व जैन मतों के दार्शनिक अवलोकन में भी सहायक है। राहुल सांकृत्यायन का 'जय योद्धैय' गणतंत्र व्यवस्था व आर्थिक क्रियाओं पर अच्छा प्रकाश डालता है। ऐसे ही एक उदाहरण शम्सुर्रहमान फारुकी के 'कई चाँद थे सरे आसमाँ' का लिया जा सकता है जो 19वीं सदी के सांस्कृतिक अतीत को एक विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत करता है। किंतु पुनः दोहराने योग्य बात यह है कि हम इनकी साहित्यिक भूमिका को भी उपेक्षित नहीं कर सकते।

निष्कर्ष

प्रेमचंद पूर्व, सम व उत्तर काल में ऐसे सैकड़ों उपन्यास रचे गए जिन्होंने साहित्य व इतिहास के घनिष्ठ संबंधों को एक बार पुनः परिभाषित कर इन्हें प्रखरता से प्रमाणित भी किया। साहित्य और इतिहास में सामंजस्य बिठाकर उन बौद्धिक व्याख्या की निर्मिती आवश्यक है जो एक दूसरे के समानांतर और समावेशी हो। हमें साहित्य में समकालीन सामाजिक आलोक मात्र न ढूंढकर नारीवादी दृष्टिकोण, पिछड़े वर्गों का इतिहास और लोक परंपराओं को भी तलाशना होगा। ऐतिहासिक उपन्यास गुजरे हुए चरित नायक और उनसे जुड़ी ज्ञात अज्ञात घटनाओं का ब्यौरा ही नहीं होता, इतिहास में रहते हैं और अनजाने ही उस इतिहास का निर्माण भी कर रहे होते हैं।[13] ऐतिहासिक पात्रों के एक पक्षीय दृष्टिकोण से चित्रण को ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं माना जाता है किंतु इनको अन्य दृष्टिकोण के साथ संगत स्थापित करके किसी निष्कर्ष की निर्मिती की जा सकती है, हालाँकि कुछ लेखकों का इसके प्रति संशय भी है। हिंदी क्षेत्र के कवियों-लेखकों ने इतिहास को लेकर अपनी समझ और दृष्टिकोण के मुताबिक रचना अवश्य की है, किंतु पेशेवर इतिहासकारों ने इन रचनाओं के आधार पर किसी निष्कर्ष की निर्मिती न की जो हिंदी भाषा जनता के लिए बहुत अच्छा हुआ वरना साहित्य गौरव बोध के आधार पर लिखित इतिहास पढ़कर निर्मित मानव बेहद खतरनाक होता।[14] हालाँकि ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रति ऐसी एकपक्षीय धारणा अनुचित है क्योंकि सामान्य जनता को इतिहास से परिचित कराने का एक अच्छा माध्यम हो सकता है साथ ही इनमें इतिहास कालखंड तथा कुछ सत्य पात्रों के इर्द-गिर्द बुनी कथाओं में न केवल समकालीन समाज का चित्रण है, बल्कि समकालीन शब्दावली और सांस्कृतिक परंपराओं का भी समावेश है, साथ ही यह कृतियां वह तीन बड़ी कमियां पूरी करने में भी सफल रही है जो इतिहास लेखन में इतिहासकार न कर पाए, यथा—इतिहास में नारी का यथोचित स्थान व समावेश, पिछड़े वर्गों का इतिहास, लोक इतिहास का प्रयोग।[15] हालाँकि ऐसे उपन्यासों का प्रयोग करते हुए हमें लेखकों के दृष्टिकोण के प्रति सावधान रहना होगा, क्योंकि जहां कई लेखकों ने न केवल प्रमाणिक इतिहास को प्रस्तुत किया है बल्कि एक इतिहास उचित संदर्भ सामग्री भी दी है, जबकि कुछ लेखकों ने मात्र ऐतिहासिक पात्रों के आधार पर एक लंबी कल्पनात्मक कथा रच दी। साहित्य को इतिहास

से अलग करने की बहस में पड़ना व्यर्थ है हमें बस यह ध्यान रखना होगा कि जिस साहित्यिक स्रोत का हम इतिहास में प्रयोग कर रहे हैं उसका उद्देश्य और इतिहास में उसके प्रयोग की सीमा क्या है। इसे एकपक्षीय दृष्टिकोण के आधार पर हम ऐतिहासिक निष्कर्ष की निर्मिति तो नहीं कर सकते किंतु अन्य व्याख्याओं के आधार पर इनमें सुसंगतता बिठाकर एक तर्कसंगत निष्कर्ष की निर्मिती की जा सकती है जो इतिहास की समृद्धि में सहायक सिद्ध होगी। एक लेखक कहते हैं कि "ऐतिहासिक उपन्यास में हमें ऐसे समाज और उसके व्यक्तियों का चित्रण करना होता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुके हैं, किंतु उसने पदचिन्ह कुछ जरूर छोड़े हैं जो उसके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं दे सकते। इन पदचिह्नों या ऐतिहासिक अवशेषों के पूरी तौर से अध्ययन को यदि अपने लिए दुष्कर समझते हैं तो कौन कहता है आप जरूर इस पद पर कदम रखें?"[16] ऐसा माना जा सकता है कि लेखक स्वयं ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के दुरुपयोग के प्रति सावधान है साथ ही वह उन स्रोतों का भी ब्यौरा देते हैं जिन्हें वह इस दृष्टि से आवश्यक मानते हैं, जैसे कि राहुल सांकृत्यायन मानते हैं कि अजंता की चित्रशालाएं पांचवी से सातवीं सदी के भारत का, भारतीय समाज का बहुत सच्चा और प्रमाणिक चित्र उपस्थित करती है।सांची व भरहुत की मूर्तियों का अच्छी तरह से अध्ययन किए बिना मौर्य और शुंग काल पर अच्छे उपन्यास नहीं लिखे जा सकते हैं।[17] ऐसे में ऐतिहासिक उपन्यासों को कल्पना मात्र कहना न तो ऐतिहासिक दृष्टि से सही है न ही साहित्यिक दृष्टि से, क्योंकि जब साहित्यिक व्याख्या के आधार पर इतिहास की रचना की जा सकती है तो ऐतिहासिक व्याख्या के आधार पर साहित्य भी ऐसी क्षमता रखता है। हमारे समक्ष भारत के समस्त कालखण्डों पर आधारित ऐसे कई उपन्यास उपलब्ध है, जिसके आधार पर हम इतिहास का न केवल वर्धन कर सकते हैं बल्कि इतिहासकारों की दृष्टि से उन लोक पृष्ठों का समावेश भी कर सकते हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है और संभवत इसी प्रयोग से समग्र और समावेशी इतिहास लेखन की धारणा दृढ़ हो पाएगी।

संदर्भ सूची

1. सांकृत्यायन, राहुल, जय यौद्धेय, किताब महल, इलाहाबाद, 1944
2. शास्त्री, आचार्य चतुरसेन, वयं रक्षम, हिंद पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2002, पृ.सं. 9
3. उपर्युक्त, पृ.सं. 25-26
4. सांकृत्यायन, राहुल, पूर्वोक्त
5. मधुरेश, इतिहासिक उपन्यास, इतिहास और इतिहास दृष्टि, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2019
6. विद्यालंकार, चन्द्रगुप्त, बाणभट्ट की आत्मकथा, आजकल पत्रिका, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जुलाई 2023, पृ.सं. 42
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, बाणभट्ट की आत्मकथा, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 1984, पृ.सं. 15
8. राघव, रांगेय, यशोधरा जीत गई, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2019
9. नागर, अमृतलाल, भूख (महाकाल), राजपाल एन्ड सन्स, नई दिल्ली, 2016, पृ.सं. 66
10. फारुकी, शम्सुर्रहमान, कई चांद थे सरे-आसमां, पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, 2013, पृ.सं. 2
11. मधुरेश, इतिहासिक उपन्यास, पूर्वोक्त
12. उपर्युक्त, पृ.सं. 14-15
13. उपर्युक्त, पृ.सं. 9
14. पराशर, पंकज, भारतीय उपन्यास पर गहन चिंतन, पुस्तक वार्ता, अंक 43, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, 2013
15. सिंह, सुरेंद्र, ऐतिहासिक हिंदी उपन्यासों में कल्पना और इतिहास दृष्टि, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ आल रिसर्च एजुकेशन एंड साइंटिफिक मेथड्स, नई दिल्ली, मई 2023
16. ऐतिहासिक उपन्यास, आलोचना, पूर्णांक 13, अक्टूबर, 1954, पृ.सं. 170
17. मधुरेश, इतिहासिक उपन्यास, पूर्वोक्त, पृ.सं. 237